जातिवार जनगणना कोई राजनैतिक मुद्दा नहीं बल्कि राष्ट्र-निर्माण की जरूरी पहल है

जयंत जिज्ञासु

सामाजिक न्याय व बंधुता का प्रश्न मनुष्यता का प्रश्न है और जातिवार जनगणना के हासिल को उसी की एक कड़ी के रूप में देखा जाना चाहिए।

हज़ारों वर्षों की जड़ता से भरे भारतीय समाज में 'समता, स्वतंत्रता व बंधुता' की स्थापना के लिए समय-समय पर कोशिशें हुई हैं। औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों ने हमारे देश के गैर-बराबरी से भरे समाज में अलग-अलग समूह की गणना कर उनके जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने का निर्णय लिया और इस कड़ी में भारत में जातिवार जनगणना की शुरुआत 1881 में हुई।

अंतिम बार जाति आधारित जनगणना 1931 में हुई थी। उसी आधार पर अब तक यह अंदाजा लगाया जाता रहा है कि देश में किस सामाजिक समूह के लोग कितनी तादाद में हैं।

मंडल कमीशन में भी 1931 की जनगणना के आधार पर ओबीसी की आबादी 52 प्रतिशत बताई गयी। आज़ादी के समय मुल्क बंटा और आबादी का एक हिस्सा पड़ोस में चला गया। हमारे पास ताज़ा आंकड़े नहीं हैं जिनके आधार पर सबके लिए समुचित नीतियां बन सकें।

जातिवार जनगणना क्यों जरूरी है

1951 से 2011 तक की हर जनगणना में संवैधानिक बाध्यता के चलते अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की गिनती तो हुई है, पर किसी दूसरी जाति की नहीं। आखिर क्या वजह है कि भारत सरकार ने अपने देश की सामाजिक सच्चाई को जानने से हमेशा मुंह चुराया?

दुनिया का शायद ही कोई लोकतांत्रिक देश होगा जो अपनो लोगों के जीवन से जुड़ी हकीकत को जानने से नाक-भौं सिकोड़े। जो समाज सर्वसमावेशी नहीं होगा, उस पाखंड से भरे खंड-खंड समाज के जरिये अखंड भारत की दावेदारी हमेशा खोखली व राष्ट्र-निर्माण की संकल्पना अधूरी होगी. जातिवार जनगणना की मांग इसलिए महत्वपूर्ण है कि अलग-अलग क्षेत्रों में ओवर-रीप्रेज़ेंटेड व अंडर-रीप्रेज़ेंटेड लोगों का एक हकीकी डेटा सामने आ सके जिनके आधार पर कल्याणकारी योजनाओं व संविधानसम्मत सकारात्मक सक्रियता की दिशा में तेज़ी से बढ़ा जा सके।

प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग के अध्यक्ष काका कालेलकर ने 1955 की अपनी रिपोर्ट में 1961 की जनगणना जातिगत आधार पर कराने की अनुशंसा की थी. द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग के अध्यक्ष बीपी मंडल अपनी रिपोर्ट में 3743 जातियों को एक जमात के रूप में सामने लाए. सामाजिक-शैक्षणिक गैर-बराबरी से निपटने का एक मुकम्मल दर्शन सामने रखते हुए मोटामोटी 40 सिफारिशों में भूमि-सुधार की भी बात थी.

जातिवार जनगणना की मांग अटल बिहारी ने की थी खारिज

दो-दो बार देश की सबसे बड़ी पंचायत में जातिवार जनगणना को लेकर आम सहमति बनी. एक बार जनता दल नीत युनाइटेड फ्रंट सरकार (1996-98) में 2001 के लिए और दूसरी बार यूपीए-2 में 2011 के लिए.

पहली बार सरकार चली गई और अटल बिहारी जब प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने उस मांग को सिरे से खारिज कर दिया. वहीं दूसरी बार मनमोहन सिंह के आश्वासन के बावजूद कुछ दक्षिणपंथी सोच के नेताओं ने बड़ी चालाकी से उस संभावना को पलीता लगा दिया.

जो जनगणना सेंसस कमीशन ऑफ इंडिया द्वारा 1948 के जनगणना कानून के मुताबिक होनी थी, उसे चार टुकड़ों में बांट कर सामाजिक-आर्थिक सर्वे की शक्ल में कराया गया.

ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण विकास मंत्रालय और शहरी क्षेत्रों में आवास व शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय की ओर से सामाजिक-आर्थिक जनगणना का संचालन किया गया. इसलिए, 4,893 करोड़ रुपये खर्च करने के बाद भी जो आंकड़े जुटाये गये, वो सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण के हैं, न कि जातिवार जनगणना के और उन आंकड़ों को भी कायदे से जारी नहीं किया गया.

जातिवार जनगणना क्यों नहीं करवा सकी कोई सरकार

वो कौन-सा डर है जिसके चलते आज़ादी के बाद आज तक कोई भी सरकार जातिवार जनगणना नहीं करवा सकी?

दरअसल, जैसे ही सारी जातियों के सही आंकड़े सामने आ जाएंगे, वैसे ही शोषकों द्वारा गढ़ा गया यह नैरेटिव ध्वस्त हो जाएगा कि ईबीसी ओबीसी की हकमारी कर रहा है या ओबीसी दलित-आदिवासी की शोषक है. वे मुश्किल से जमात बने हज़ारों जातियों को फिर आपस में लड़ा नहीं पाएंगे और हर क्षेत्र में उन्हें आरक्षण व समुचित भागीदारी बढ़ानी पड़ेगी.

यह हास्यास्पद ही है कि बिना पुख़्ता आंकड़ों के, फकत धारणा व गत 5 वर्षों के डेटा के आधार पर रोहिणी कमीशन के जरिए पिछड़ों को उप श्रेणियों में खंडित करने की कवायद चल रही है.

जातिवार जनगणना कोई राजनैतिक मामला नहीं

वर्तमान मोदी सरकार ने 2018 में एक शिगूफा छोड़ा कि हम ओबीसी की गिनती कराएंगे. तत्कालीन गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने बयान संसद में नहीं दिया था बल्कि 2019 के लोकसभा चुनाव को देखते हुए यूं ही जुमले की तरह उछाल दिया.

उस समय भी हमारा मत था कि सिर्फ ओबीसी की ही क्यों, भारत की हर जाति के लोगों को गिना जाए. जब गाय-घोड़ा-गधा-कुत्ता-बिल्ली-भेड़-बकरी-मछली-पशु-पक्षी, सबकी गिनती होती है, तो इंसानों की क्यों नहीं? आखिर पता तो चले कि भीख मांगने वाले, रिक्शा खींचने वाले, ठेला लगाने वाले, फुटपाथ पर सोने वाले लोग किस समाज से आते हैं। उनके उत्थान के लिए सोचना वेलफेयर स्टेट की जम्मिदारी है और इस भूमिका से वह मुंह नहीं चुरा सकता.

इसलिए, जातिवार जनगणना कोई राजनैतिक मामला नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है. जो भी इसे अटकाना चाहते हैं, वे दरअसल इस देश के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं.

इस प्रवृत्ति को रेखांकित करती अमरीकी कवयित्री विलकॉक्स 'इन इंडिया'ज़ ड्रीमी लैंड' (भारत की स्वप्निल पर) में कहती हैं:

भारतवर्ष में लोग बात सुनते
उन्हीं की जो चीखते व चिल्लाते;

क्योंकि हर जाति दुर्बलतर जाति पर धौंस जमाती, और, ब्रिटिशजन उन सब को हिकारत भरी नजर से देखते.

तेजस्वी यादव की पहल

बिहार और महाराष्ट्र सरकार ने जातिवार जनगणना के लिए प्रस्ताव पारित करके केंद्र को भेजा. तमिलनाडु ने हमेशा सकारात्मक रुख दिखाया. द्रविड़ियन आंदोलन की उपज पार्टियों ने बहुत हद तक बीमारी के डायग्नोसिस में रूचि दिखाई. उड़ीसा और यूपी समेत देश के अनेक सूबे में जातिवार जनगणना की जबर्दस्त मांग हुई।कर्नाटक में तो केंद्र के अड़ियल रुख को देखते हुए वहां की राज्य सरकार ने खुद से जातिवार गणना का निश्चय करके दिखा दिया।

राजद की पहल पर दो-दो बार बिहार विधानमंडल में जातिवार जनगणना को लेकर संकल्प पारित हो चुका है. लालू प्रसाद, शरद यादव और मुलायम सिंह लंबे समय से इस मुद्दे पर सदन से सड़क तक जमकर संघर्ष करते रहे हैं. उत्तर भारत में अपनी दखल रखने वाले इन तीन बड़े नेताओं की स्वास्थ्य-लाभ की जानकारी हेतु एक-दूसरे से हालिया मुलाकात ने जातिवार जनगणना के विमर्श को एक बार फिर से ज़िंदा कर दिया है.

हाल ही में जब भारत के गृह राज्यमंत्री नित्यानंद राय ने संसद में बयान दिया कि सरकार जातिवार जनगणना नहीं कराएगी, तो तेजस्वी यादव के प्रस्ताव पर नीतीश कुमार ने सर्वदलीय शिष्टमंडल के साथ प्रधानमंत्री मोदी से मुलाकात की.

तेजस्वी ने जातिवार जनगणना से समाज के अंदर विभाजन-रेखा के उभरने की चिंता में दुबले हो रहे पुनरुत्थानवादी ताकतों को तार्किक जवाब देते हुए कहा कि जब सेंसस में धर्म का कॉलम रहने से लोग धर्मांध नहीं हो जाते, तो कास्ट का कॉलम जोड़ने से जातीय विद्वेष कैसे फैलने लगेगा?

प्रधानमंत्री मोदी के जवाब का इंतज़ार कर रहे तेजस्वी ने उन्हें रिमाइंडर भेजने की बात कही है.

'बौद्धिक' बिरादरी की मसिक्रीड़ा

अभय दूबे, बद्री नारायण, वेदप्रताप वैदिक, संजय कुमार, संकेत उपाध्याय, रमेश मिश्रा समेत अनेकानेक 'यथास्थितिवादी बुद्धिजीवियों' व खबरनवीसों द्वारा जातिवार जनगणना को लेकर तमाम कुतर्क पेश किये जा रहे हैं.

बद्री नारायण दैनिक जागरण में लिखते हैं, 'सियासी शस्त्र न बने जातीय जनगणना', दैनिक भास्कर में अभय दूबे लोगों के मन में डर पैदा करने की मंशा से लिखते हैं, 'जातिगत जनगणना के गहन व बुनियादी प्रभाव होंगे जो इस समय न तो इसके समर्थकों की समझ में आ रहे हैं न विरोधियों के', नवभारत टाइम्स में वेदप्रताप वैदिक मसिक्रीड़ा करते हैं, 'कोटा बढ़वाना हो तो क्यों न याद आए जाति', फिर वे दैनिक भास्कर में निर्गुण भजते हैं, 'जनगणना में जाति नहीं, जरूरत पूछी जाए तभी पिछड़ों का हित होगा'.

संकेत उपाध्याय दैनिक भास्कर में मानसमंथन करते नज़र आते हैं, 'राजनीति का एटमी बम क्यों है आरक्षण देश में आरक्षण प्रक्रिया की समीक्षा क्यों नहीं की जाती', वहीं दैनिक जागरण में रमेश मिश्रा चिंतित होकर कलम चलाते हैं, 'मुख्य जनगणना के साथ-साथ जाति की जनगणना मुश्किल, जानिए क्या-क्या हो सकती हैं दिक्कतें'.

बावजूद इन तिकड़म व विषवमन से भरे लेखन के, नेशनल बिल्डिंग में लगी पीढ़ी जद्दोजहद कर रही है. लोग भारतीय समाज के मनोविज्ञान को भूल जाते हैं और उसका निर्गुण बखान कर सच्चाई पर परदा डालने की कोशिश करते हैं.

मंडल कमीशन की रिपोर्ट में बीपी मंडल ने रजनी कोठारी को उद्धृत करते हुए लिखा था, 'भारत में जो लोग राजनीति में जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे ऐसी राजनीति तलाशते हैं, जिसका समाज में कोई आधार नहीं है'. मनीष रंजन ठीक कहते हैं कि कोठारी के 'जातियों के राजनीतिकरण' का सिद्धांत के तहत ही जाति-व्यवस्था को व्यावहारिक चुनौती दी जा सकती है.

जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने भी सरकार से जनगणना में पिछड़े वर्ग समूह के आंकड़े जुटाने का निवेदन किया था. डेमोक्रेसी को कभी भी फॉर ग्रांटिड नहीं लिया जा सकता. आर.जी इगरसोल कहते हैं, 'Eternal vigilance is the price of liberty.' गेल ओम्वेट ने अलग-अलग मसलों पर उद्वेलित लोगों के अप्रोच पर एक बार टिप्पणी की थी, 'मंडल के बाद इस देश में कोई बड़ा आंदोलन नहीं हुआ जिसने यहां के जनमानस को झकझोरा हो'.

हज़ारों सालों से जिनके पेट पर ही नहीं, बल्कि दिमाग पर भी लात मारी गई है, उनकी प्रतिष्ठापूर्ण ज़िंदगी सुनिश्चित करना इस समाज व देश के सर्वांगीण विकास के लिए वर्तमान समय की सबसे बड़ी जरूरत है. अंततोगत्वा, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना से ही भारत का भला होगा, 'हम भारत के लोग' के जीवन में खुशहाली आएगी. आखिरकार, सामाजिक न्याय व बंधुता का प्रश्न मनुष्यता का प्रश्न है और जातिवार जनगणना के हासिल को उसी की एक कड़ी के रूप में देखा जाना चाहिए.

पहचान की राजनीति को तोड़ते हुए नये फलक पर जनता के बीच एकता बना रहा है किसान आंदोलन

विगत 30 और 35 वर्षों का भारतीय लोकतंत्रिक इतिहास मूलत, पहचान की राजनीति और प्रतीकात्मकता के दायरे में ही घूमता रहा है। 'गर्व से कहो हम हिंदू हैं' के कर्कश शोर के बीच, इसके समानांतर पिछड़े दलित होने की वर्णवादी व्यवस्था के चलते अपनी पहचान को बुलंद रखो जैसे नारे भारतीय राजनीति के आकाश में गूंजते रहे। राम मंदिर के इर्द-गिर्द बुनी गई ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पूरी राजनीति हिंदू पहचान को बुलंद करने और राजनीति को धर्म के इर्द-गिर्द परिभाषित करने पर केंद्रित की गई। हिंदू बहुमत होने का सवाल केंद्र में रखकर समग्र भारतीय समाज को हिंदू सांस्कृतिक पहचान की इकाई के अंदर समाहित करने का लंबा और दीर्घकालीन अभियान चलाया गया।

स्वाभाविक है कि लोकतांत्रिक परिवेश के मध्य विकसित हो रहा भारतीय समाज सामंती उत्पादन प्रणाली के जकड़न के ढीला होने और राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रगति के क्रम में पिछड़े, दलित, अल्पसंख्यक समाज में भी मध्यवर्गीय बौद्धिक और आर्थिक रूप से सशक्त सामाजिक समूहों का विकास हुआ। अपने सामाजिक आर्थिक राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए इन मध्यवर्गीय समूहों ने भी पहचान की ही राजनीति के सरल और सुलभ मार्ग को चुना। राजनीति में प्रतीकात्मकता ने लोकतांत्रिक परिवेश को घेर लिया। सारे आयोजन कार्यक्रम विचार निर्माण की प्रक्रिया के दौरान अतीत के मिथकीय नायकों की खोज और गौरवशाली अतीत की काल्पनिक स्वर्णिम परिकल्पना ने सभी तरह के समाजों में आधे-अधूरे ऐतिहासिक संदर्भों के साथ मुख्य भूमिका ग्रहण कर ली। समाज के राजनीतिक सामाजिक समीकरण इस पहचान की मूल राजनीतिक परियोजना के इर्द-गिर्द घूमने लगे। हम देखते हैं 25, 30 वर्षों में राजनीतिक सत्ता में भागीदारी अपने-अपने सामाजिक समूहों के सुदृणीकरण और हिंदू सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पहचान के बीच में ही टकराती रही, घूमती रही और आगे पीछे होती रही।

पाकिस्तान और इस्लाम विरोधी राष्ट्रवादी हिंदू राजनीति और वैचारिक विमर्श की परियोजना का केंद्रीय सार तत्व बना। 9/11 के बाद अमेरिका की राजनीति के केंद्र में इस्लाम विरोध मुख्य भूमिका में आ गया। भारत की हिंदूवादी राजनीति में इसी विचार विमर्श को अपना रणनीतिक कार्यभार बना लिया और श्रृंखलाबद्ध बम विस्फोटों और आतंकवादी घटनाओं के परिवेश में इस राजनीति को तार्किक आधार भी दे दिया। कॉरपोरेट नियंत्रित आईटी क्रांति के बाद किसी भी शासकीय विचार और चिंतन को केंद्रीय तत्व बनाने में आधुनिक मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुछ समय तक उसने हिंदुत्व की परियोजना और सम्मान और पहचान की राजनीति जिसे सामाजिक न्याय की खूबसूरत शब्दावली में सजाया गया था उसके मध्य संतुलनकारी बनने की कोशिश करता रहा। लेकिन अंतर्वस्तु कारपोरेट हिंदुत्व गठजोड़ की ओर झुकी रही और उपर्युक्त अवसर आते यह गठजोड़ समाज का संचालनकर्ता बन गया।

वही सामाजिक पहचान की वैचारिकी ब्राह्मणवादी सामाजिक ढांचे में दलित और पिछड़ी जातियों के समायोजन और संयोजन के समीकरण बैठाने मैं उलझी रही। और इन्हीं समीकरणों के आधार पर चुनावी वैतरणी पार करने की राजनीति लंबे समय तक भारतीय समाज को अपनी गिरफ्त में लिए रही। कभी-कभी विकास और कानून व्यवस्था के सवाल भी उठाए जाते रहे लेकिन इनकी मूल प्रवृत्ति ऊपर चिन्हित किए गए दो अंतर्विरोधों की वैचारिक धाराओं के बीच केंद्रित रहे। उत्तर प्रदेश की राजनीति में कई बार विकास पुरुष बनने के तमाशे उसी उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण की धारा के अंतर्गत चलने वाली नई आर्थिक नीतियों के इर्द-गिर्द ही केंद्रित थे। वैश्विक राजनीतिक परिस्थिति में हुए परिवर्तन के चलते कारपोरेट पूंजी केंद्रित उदारीकरण की नीतियों पर पहचान और हिंदुत्व की राजनीति में आम सहमति बनी रही।

2014 के बाद मोदी सरकार ने मनमोहन, चिदंबरम, यशवंत सिन्हा के द्वारा विकसित और संचालित आर्थिक नीतियों को आक्रामक और क्रुरता पूर्वक आगे बढ़ाया। हिंदुत्व और कारपोरेट के नग्न गठजोड़ के चलते भारत के आर्थिक और सामाजिक जीवन में तीखे तनाव पैदा हुए। मोदी सरकार के आने के बाद से ही कॉरपोरेट परस्त आर्थिक नीतियों को तेज गति से लागू करना शुरू किया गया। वे सभी कानून जो कारपोरेट पूंजी की लूट में थोड़ा सा भी अवरोध पैदा कर सकते थे उन्हें समाप्त किया जाने लगा। सामाजिक जीवन में समन्वय बनाने वाले सभी प्रावधान और संवैधानिक गारंटियों को निरस्त किया जाने लगा। राज्य अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से हाथ खींचना शुरू किया। साथ ही ऐसे कानूनों और अध्यादेशों को लागू किया गया जो भारत के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के दोहन में कारपोरेट पूंजी को पूरी छूट देते हों।

कारपोरेट पूंजी दुनिया भर के देशों का शिकार करते हुए भारतीय कारपोरेट घरानों के साथ नग्न गठजोड़ करके भारत में अपने लूट के व्यापार को मजबूत करने में जुट गई। प्राकृतिक संपदा के साथ कृषि क्षेत्र तक पर निगाहें गड़ा दीं। तीन कृषि कानून और मजदूरों के ऊपर चार श्रम संहिता और नई शिक्षा नीति सहित सभी आर्थिक क्षेत्र की गतिविधियों को कारपोरेट के हवाले करने का कदम उठाने के मकसद से लाये गये। महामारी की आड़ में इन सभी बर्बर नीतियों को क्रुरता पूर्वक लागू करने का कदम उठाया गया। संसदीय परंपराओं तक को दरकिनार करते हुए बहुमत वाद का नग्न प्रदर्शन नीतियों को लागू करने के लिए किया गया। जिसके चलते भारत के सभी उत्पादक क्षेत्रों में और सामाजिक जीवन में विरोध खुलकर के सामने आ गए। वे सामाजिक समूह जो अभी तक कारपोरेट नियंत्रित नौकरशाह पूंजीवाद के साथ रिश्तो में बंधे थे वह भी टकराव और जीवन मरण के संघर्ष में उतरने के लिए मजबूर हो गए। 2013 तक जो आधुनिक कृषि के इलाके

कारपोरेट हिंदुत्व के राजनीतिक प्रभाव में थे आज आंदोलन के खौलते हुए क्षेत्र बन गए हैं। संयुक्त किसान मोर्चा द्वारा संचालित किसान आंदोलन 9 महीने से इन्हीं कारपोरेट परस्त नीतियों के खिलाफ चल रहा है। वह पंजाब हरियाणा के अपने केंद्रीय इलाके से विस्तृत होते हुए पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सबसे संवेदनशील क्षेत्र मुजफ्फरनगर तक फैल गया। 5 सितंबर की मुजफ्फरनगर की मजदूर किसान पंचायत भारत में कॉरपोरेट लूट के खिलाफ एक बड़ा संदेश दे गई। अभी तक अपने को गैर राजनीतिक कहने वाले किसान संगठन विशुद्ध रूप से राजनीतिक विचारों के साथ चलने वाले किसान संगठनों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लगातार किसान आंदोलन को मजबूत करने और उसे विस्तार देने में लगे हैं। उन्हें सफलता भी मिलती जा रही है। पहली बार किसी किसान पंचायत को मजदूर किसान पंचायत कहा गया और हिंदू मुस्लिम एकता सांप्रदायिक सद्भाव को कायम करने तथा किसानों से आह्वान किया गया कि भाजपा आरएसएस के किसी भी दंगाई मंसूबे को पूरा ना होने दें। और इस विकास क्रम में किसान पंचायतों को भाजपा संघ विरोधी राजनीतिक दिशा लेते हुए भारत के करोड़ों देशवासियों ने देखा। यह भारत के सामाजिक राजनीतिक जीवन के विकास में एक नई छलांग है। इस आंदोलन ने अब संविधान लोकतंत्र देश बचाओ जैसे आवाहन किये हैं।

साथ ही दलित, पिछड़े, मजदूर, महिला और खाद्य सुरक्षा तक के सवालों को संबोधित करना शुरू कर दिया है जो भारत के 125 करोड़ लोगों के अपने जीवन के सवाल हैं। भारत के राजनीतिक रंगमंच पर किसान मजदूर छात्र नौजवान गरीब आदिवासी अल्पसंख्यक जैसे हासिये पर पड़ी ताकतें मुख्य भूमिका में आती हुई दिख रही हैं। यह मुजफ्फरनगर के किसान मजदूर पंचायत में साफ-साफ देखा जा सकता है। अब उन सभी तत्वों को जो लोकतंत्र, संविधान और धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक समरसता में यकीन करते हैं जाति धर्म को राजनीति से बाहर करके लोकतांत्रिक समाज बनाना चाहते हैं। उनके लिए इस किसान मजदूर पंचायत में छिपे संदेश बहुत महत्वपूर्ण है। जिन्हें अवस्य पढ़ा और देखा जाना चाहिए।

-साइबर नजर